[2019] 2 उम. नि. प. 416

एन्स राजशेखर

बनाम

अगुस्तुस जेबा अनंत

18 जनवरी, 2019

न्यायमूर्ति (डा.) धनञ्जय वाई चन्द्रचूड़ और न्यायमूर्ति एम. आर. शाह

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26) – धारा 138 और 139 – चैक का अनादरण – वैध रूप से प्रवर्तनीय ऋण के बारे में उपधारणा – यदि परिवादी उन निधियों के स्रोत को स्थापित करने में असफल रहता है, जिसका उपयोग अभिकथित रूप से ऋण देने के लिए किया गया था तो धारा 139 के अधीन उपधारणा का खंडन हो जाता है क्योंकि अभिलेख पर विद्यमान सामग्री के आधार पर अभियुक्त की यह प्रतिरक्षा अधिसंभाव्य हो जाती है कि वैध रूप से प्रवर्तनीय ऋण का अभाव था ।

प्रस्तुत मामले में, प्रत्यर्थी-परिवादी का पक्षकथन यह है कि अपीलार्थी ने उस रकम का प्रतिदाय करते हुए, जो कि फरवरी, 2004 मास में उधार ली गई थी, 15 लाख रुपए के दायित्व का निर्वहन करने के मद्धे तारीख 9 मार्च, 2005 को उसके पक्ष में 5 लाख रुपए की राशि का एक चैक जारी किया था । परिवादी के अनुसार, उस रकम का प्रतिदाय छह मास के भीतर किया जाना था । जब परिवादी ने तारीख 23 मार्च, 2005 को चैक प्रस्तुत किया तो बैंक द्वारा उसे निधियों की अपर्याप्तता के कारण लौटा दिया गया था । परिवादी ने वह चैक 14 जुलाई, 2005 को पुनः भुगतान के लिए प्रस्तुत किया किन्तु उसे उसी परिणाम सहित लौटा दिया गया था । परिवादी द्वारा तारीख 10 अगस्त, 2005 को मांग संबंधी एक सूचना जारी की गई थी । इसके उत्तर में, अपीलार्थी-अभियुक्त ने इस बात से इनकार किया कि ऐसा कोई विधिक रूप से प्रवर्तनीय ऋण था । अपीलार्थी की प्रतिरक्षा यह थी कि अपीलार्थी और उसकी पत्नी तथा परिवादी और उसकी पत्नी ने समीप-समीप गृह-स्थलों का क्रय किया था । परिवादी ने अभिकथित रूप

से बंगलौर में वित्तीय संस्थाओं से गृह ऋण अभिप्राप्त करने के प्रयोजनार्थ अपीलार्थी को उसके पक्ष में मुख्तारनामा निष्पादित करने के लिए प्रेरित किया था । अपीलार्थी के अनुसार, परिवादी द्वारा अपीलार्थी से यू.टी.आई. बैंक लिमिटेड के कम से कम चार खाली चैक और वैश्य बैंक की एक चैक बुक, जिसमें दस चैक थे, प्राप्त किए थे । उन चैकों में से, जो अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी-परिवादी को सौंपे गए थे, एक चैक का अभिकथित रूप से दुरुपयोग किया गया था । परिवादी ने परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन बंगलौर के अपर मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट के समक्ष एक परिवाद फाइल किया था । विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को दोषमुक्त कर दिया । परिवादी-प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने अपील मंजूर कर ली और रंगप्पा बनाम श्री मोहन वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए मामले को विचारण न्यायालय को वापस भेज दिया । प्रतिप्रेषण किए जाने पर, विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया और उसे एक वर्ष का कारावास भुगतने और 7 लाख रुपए के जुर्माने का संदाय करने के लिए दंडादिष्ट किया, जिसमें से 6.75 लाख रुपए की रकम प्रतिकर के रूप में प्रत्यर्थी को संदत्त करने का निदेश दिया गया था । अपीलार्थी ने बंगलौर के अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष दांडिक अपील संस्थित की । प्रथम अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषसिद्धि और दंडादेश को उलट दिया । इस पर प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने यह अभिलिखित करते हुए दोषमुक्ति के निर्णय को उलट दिया कि जबकि अपील की सूचना की तामील अपीलार्थी को की गई थी किन्तु वह अनुपस्थित रहा था । उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 138 के अधीन दोषसिद्धि अभिलिखित करते समय दंडादेश को इस आशय से उपांतरित कर दिया कि अपीलार्थी 5 लाख रुपए के जुर्माने का संदाय करेगा जो कि प्रत्यर्थी को प्रतिकर के रूप में संदत्त किया जाएगा और उसमें व्यतिक्रम करने पर वह तीन मास की अवधि का कारावास भुगतेगा । चूंकि विशेष इजाजत याचिका तथा याचिका फाइल करने में 410 दिनों का विलंब था इसलिए परिसीमा के प्रश्न के संबंध में सूचना जारी की गई थी । अपीलार्थी द्वारा विलंब को माफ करने के लिए दर्शाए गए हेतुक पर

विचार करने के पश्चात् विलंब को माफ करना उपयुक्त समझा गया । इस मामले के अभिलेख से ऐसा प्रकट नहीं होता है कि अपीलार्थी की ओर से अपने उपचारों को अग्रसर करते समय उपेक्षा करने संबंधी कोई विमर्शित कार्य किया गया था । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित - इस मामले का एक महत्वपूर्ण पहलू यह था कि परिवादी उन निधियों के स्रोत को स्थापित करने में असफल रहा है जिसका उपयोग उसने अभिकथित रूप से अपीलार्थी को 15 लाख रुपए का ऋण देने के लिए किया था । परिवादी ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह अभिसाक्ष्य दिया कि इसके पूर्व अपीलार्थी ने दो चैक दिए थे, जिनमें से एक 5 लाख रुपए के लिए आई. सी. आई. सी. आई. बैंक का था और दूसरा 10 लाख रुपए के लिए केनरा बैंक का था, जो कि उसने प्रस्तुत किए थे । परिवादी ने यह स्वीकार किया कि उसने अपने परिवाद में अभियुक्त द्वारा ये दोनों चैक जारी किए जाने के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया था । परिवादी द्वारा उन दो पूर्ववर्ती चैकों की, जो अभिकथित रूप से अपीलार्थी द्वारा जारी किए गए थे, परिणति के संबंध में कुछ भी नहीं कहा गया था । पूर्ववर्ती दो चैकों से संबंधित तथ्यों और वसूली के लिए उठाए गए कदमों, यदि कोई हैं, को प्रकटित न करना भी एक तात्विक विचारणा है जिससे यह उपदर्शित होता है कि संव्यवहार के संबंध में संदेह था । तथ्यों और परिस्थितियों पर समग्र रूप से विचार करने पर और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के आधार पर प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 139 के अधीन उपधारणा का खंडन हो गया है और प्रतिरक्षा अधिसंभाव्य हो गई है । उच्च न्यायालय के निर्णय से, मामले का यह महत्वपूर्ण पहलू सामने आता है कि साक्ष्य का मूल्यांकन नहीं किया गया था या प्रथम अपील न्यायालय द्वारा प्रस्तुत किए गए कारणों के प्रति भी निर्देश नहीं किया गया था । उच्च न्यायालय ने रंगप्पा वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का उल्लेख किया । उच्च न्यायालय ने उस विनिश्चय का उल्लेख करते हुए यह अभिनिर्धारित करके दोषमुक्ति के आदेश को उलट दिया कि संव्यवहारों की मात्र इनकारी या संपूर्ण संव्यवहार की सर्वग्राही इनकारी को मान्य

प्रतिरक्षा नहीं समझा जा सकता था । उच्च न्यायालय का निर्णय असंतोषप्रद है और उसमें किसी भी प्रकार के साक्ष्य का उल्लेख नहीं किया गया है । तथ्य संबंधी उन निष्कर्षों को, जो कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त करते समय निकाले गए थे, उलटने का बिल्कुल भी कोई विधिमान्य आधार नहीं था । रंगप्पा (उपर्युक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा अधिकथित विधि को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी ने अधिनियम की धारा 139 के अधीन उपधारणा का सम्यक् रूप से खंडन कर दिया है । उसकी इस प्रतिरक्षा को अभिलेख पर विद्यमान सामग्री के आधार पर अधिसंभाव्य पाया गया था कि वैध रूप से प्रवर्तनीय किसी भी ऋण का अभाव था । परिणामस्वरूप, प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति का आदेश न्यायोचित था । (पैरा 13, 14 और 15)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[2010] (2010) 11 एस. सी. सी. 441 :
रंगप्पा बनाम **श्री मोहन** । 6

दांडिक अपीली अधिकारिता : 2019 की दांडिक अपील सं. 95-96.

2012 की दांडिक अपील सं. 861 में कर्नाटक उच्च न्यायालय की बंगलौर न्यायपीठ के तारीख 14 नवम्बर, 2014 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री जय किशोर सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री अभय कुमार, सौरभ मिश्रा, विनीत कुमार सिंह और हिमांशु पाल सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) धनञ्जय वाई चन्द्रचूड़ ने दिया ।

न्या. (डा.) चन्द्रचूड़ – इजाजत दी जाती है ।

2. ये अपीलें कर्नाटक उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 14 नवम्बर, 2014 के उस निर्णय और आदेश से उद्भूत हुई हैं

जिसके द्वारा अपीलार्थी को परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (जिसे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 138 के अधीन अपराध से दोषमुक्त करने वाले निचले अपीली न्यायालय के निर्णय को उलट दिया गया था ।

3. प्रत्यर्थी-परिवादी का पक्षकथन यह है कि अपीलार्थी ने उस रकम का प्रतिदाय करते हुए, जो कि फरवरी, 2004 मास में उधार ली गई थी, 15 लाख रुपए के दायित्व का निर्वहन करने के मद्धे तारीख 9 मार्च, 2005 को उसके पक्ष में 5 लाख रुपए की राशि का एक चैक जारी किया था । परिवादी के अनुसार, उस रकम का प्रतिदाय छह मास के भीतर किया जाना था । जब परिवादी ने तारीख 23 मार्च, 2005 को चैक प्रस्तुत किया तो बैंक द्वारा उसे निधियों की अपर्याप्तता के कारण लौटा दिया गया था । परिवादी ने वह चैक 14 जुलाई, 2005 को पुनः भुगतान के लिए प्रस्तुत किया किन्तु उसे उसी परिणाम सहित लौटा दिया गया था । परिवादी द्वारा तारीख 10 अगस्त, 2005 को मांग संबंधी एक सूचना जारी की गई थी । इसके उत्तर में, अपीलार्थी-अभियुक्त ने इस बात से इनकार किया कि ऐसा कोई विधिक रूप से प्रवर्तनीय ऋण था । अपीलार्थी ने इसके उत्तर में इस प्रकार कथन किया :-

> "4. मेरे मुवक्किल और उसकी पत्नी तथा आपके मुवक्किल और उसकी पत्नी ने तारीख 31 जनवरी, 2001 को बंगलौर के कृष्णराजपुरम हुबली के होआरामवुआग्रहारा ग्राम में सर्वेक्षण सं. 96/3 में पृथक्-पृथक् गृह स्थलों का क्रय किया था । ये सभी स्थल एक दूसरे के समीप अवस्थित हैं । आपके मुवक्किल ने मेरे मुवक्किल और मेरे मुवक्किल की पत्नी को अपने पक्ष में मुख्तारनामा देने के लिए प्रलोभित किया जिससे कि वह बंगलौर स्थित वित्तीय संस्थाओं से गृह ऋण अभिप्राप्त करने के मामले को आगे बढ़ाया जा सके । तथापि, आपके मुवक्किल ने मुख्तारनामा तैयार कराया और उसमें विक्रय से संबंधित खंड भी शामिल किए गए । जब मेरे मुवक्किल ने विक्रय से संबंधित खंडों के समाविष्ट करने के बारे में पूछताछ की तो आपके मुवक्किल ने यह कहा था कि ये खंड अनजाने में टंकित हो गए थे और मुख्तारनामे का प्रयोजन

केवल ऋण अभिप्राप्त करना है और इसलिए इसे रजिस्ट्रीकृत कराने की आवश्यकता नहीं है ।

5. आपके मुवक्किल ने इस मुख्तारनामे के अतिरिक्त मेरे मुवक्किल से मूल दस्तावेज़, जो कि दस्तावेज़ सं. 10470/2001 है और खाता, कर रसीदें, अनुमोदित रेखांक और यू. टी. आई. बैंक, टूटीकोरिन के 4 खाली चैक, जिसके अंतर्गत आपकी सूचना में उल्लिखित चैक भी शामिल है और वैश्य बैंक, बंगलौर की चैक बुक, जिसमें 10 चैक थे, अभिप्राप्त किए ।

6. आपके मुवक्किल ने ये चैक यह कहकर प्राप्त किए थे कि जब ऋण मंजूर किया जाएगा तब वित्तीय संस्थाएं चैकों की मांग करेंगी जिससे कि इन चैकों का उपयोग ऋण की रकम का मासिक प्रतिदाय करने के लिए किया जा सके । आपके मुवक्किल ने अब ऐसे एक चैक का दुरुपयोग किया है मानो कि वह मेरे मुवक्किल द्वारा तारीख 9 मार्च, 2005 को जारी किया गया था । इसके बाद मेरे मुवक्किल और उसकी पत्नी ने मुख्तारनामा रद्द कर दिया और आपके मुवक्किल से चैक और दस्तावेज़ लौटाने का अनुरोध किया । तथापि, आपका मुवक्किल विशिष्ट रूप से अर्ध-निर्मित भवन सहित गृह-स्थलों को अपने लिए और अपने पिता के लिए हथियाना चाहता है । इस संबंध में इससे पूर्व भी एक प्रयास किया गया था । आपके मुवक्किल के पिता ने आपके मुवक्किल से दुरभिसंधि करके तारीख 9 मई, 2005 की एक सूचना भेजी जिसमें मेरे मुवक्किल के विरुद्ध ये मिथ्या आक्षेप किए गए हैं कि उसने ऊपर उल्लिखित सर्वेक्षण संख्यांक पर अवस्थित उक्त गृह-स्थल का विक्रय-विलेख उसके पक्ष में निष्पादित कर दिया है । चूंकि यह प्रयास विफल हो गया इसलिए अब पुत्र, आपका मुवक्किल, मेरे मुवक्किल को उक्त गृह-स्थल को छोड़ने के लिए तंग करने हेतु ऊपर उल्लिखित चैक का अवैध रूप से उपयोग करके एक भिन्न तरीके से कोशिश कर रहा है ।"

4. जैसा कि उपरोक्त उत्तर से उपदर्शित होता है, अपीलार्थी की प्रतिरक्षा यह थी कि अपीलार्थी और उसकी पत्नी तथा परिवादी और

उसकी पत्नी ने समीप-समीप गृह-स्थलों का क्रय किया था । परिवादी ने अभिकथित रूप से बंगलौर में वित्तीय संस्थाओं से गृह ऋण अभिप्राप्त करने के प्रयोजनार्थ अपीलार्थी को उसके पक्ष में मुख्तारनामा निष्पादित करने के लिए प्रेरित किया था । अपीलार्थी के अनुसार, परिवादी द्वारा अपीलार्थी से यू. टी. आई. बैंक लिमिटेड के कम से कम चार खाली चैक और वैश्य बैंक की एक चैक बुक, जिसमें दस चैक थे, प्राप्त किए थे । उन चैकों में से, जो अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी-परिवादी को सौंपे गए थे, एक चैक का अभिकथित रूप से दुरुपयोग किया गया था ।

5. परिवादी ने अधिनियम की धारा 138 के अधीन तारीख 9 सितम्बर, 2005 को, बंगलौर के अपर मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट के समक्ष एक परिवाद, जो कि 2006 का सी.सी. सं. 26999 है, फाइल किया था ।

6. विचारण न्यायालय ने तारीख 31 जनवरी, 2009 के निर्णय द्वारा अपीलार्थी को दोषमुक्त कर दिया । परिवादी-प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2009 की दांडिक अपील सं. 285 फाइल की । उच्च न्यायालय ने तारीख 29 अक्तूबर, 2010 के अपने निर्णय द्वारा अपील मंजूर कर ली और **रंगप्पा** बनाम **श्री मोहन**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए मामले को विचारण न्यायालय को वापस भेज दिया । प्रतिप्रेषण किए जाने पर, विचारण न्यायालय ने तारीख 5 मार्च, 2011 के निर्णय द्वारा अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया और उसे एक वर्ष का कारावास भुगतने और 7 लाख रुपए के जुर्माने का संदाय करने के लिए दंडादिष्ट किया, जिसमें से 6.75 लाख रुपए की रकम प्रतिकर के रूप में प्रत्यर्थी को संदत्त करने का निदेश दिया गया था । अपीलार्थी ने बंगलौर के अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष 2011 की दांडिक अपील सं. 245 संस्थित की । प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 5 मार्च, 2012 के निर्णय द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषसिद्धि और दंडादेश को उलट दिया । इस पर प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील फाइल की, जो कि 2012 की दांडिक अपील सं. 861 है । उच्च

---

[1] (2010) 11 एस. सी. सी. 441.

न्यायालय ने यह अभिलिखित करते हुए दोषमुक्ति के निर्णय को उलट दिया कि जबकि अपील की सूचना की तामील अपीलार्थी को की गई थी किन्तु वह अनुपस्थित रहा था । उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 138 के अधीन दोषसिद्धि अभिलिखित करते समय दंडादेश को इस आशय से उपांतरित कर दिया कि अपीलार्थी 5 लाख रुपए के जुर्माने का संदाय करेगा जो कि प्रत्यर्थी को प्रतिकर के रूप में संदत्त किया जाएगा और उसमें व्यतिक्रम करने पर वह तीन मास की अवधि का कारावास भुगतेगा । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषसिद्धि को कायम रखा गया था किन्तु जुर्माने की रकम को घटा दिया गया था ।

7. तारीख 29 अप्रैल, 2016 को परिसीमा के प्रश्न के संबंध में सूचना जारी की गई थी क्योंकि विशेष इजाजत याचिका तथा याचिका फाइल करने में 410 दिनों का विलंब था । हमने अपीलार्थी द्वारा विलंब को माफ करने के लिए दर्शाए गए हेतुक पर विचार करने के पश्चात् विलंब को माफ करना उपयुक्त समझा । हमें इस मामले के अभिलेख से ऐसा प्रकट नहीं होता है कि अपीलार्थी की ओर से अपने उपचारों को अग्रसर करते समय उपेक्षा करने संबंधी कोई विमर्शित कार्य किया गया था ।

8. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल ने उच्च न्यायालय के निर्णय को चुनौती देते हुए दो पहलुओं के संबंध में दलीलें दी हैं । प्रथमतः, यह दलील दी गई है कि वैध रूप से प्रवर्तनीय ऋण का अभाव था । अतः, इस बात पर जोर दिया गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा जो दोषसिद्धि अभिलिखित की गई है, वह कायम रखे जाने योग्य नहीं है । द्वितीयतः, इस बात पर जोर दिया गया है कि अपीलार्थी ने उस भार का निर्वहन कर दिया है जो कि धारा 139 के उपबंधों द्वारा डाला गया है और **रंगप्पा** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय द्वारा यथापेक्षित अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता के आधार पर उसने अपनी प्रतिरक्षा स्थापित कर दी है । विद्वान् काउन्सेल ने अपर सेशन न्यायाधीश के तारीख 5 मार्च, 2012 के दोषमुक्ति वाले निर्णय में साक्ष्य के मूल्यांकन को प्रस्तुत अपील के समर्थन में अपीलार्थी की दलीलों के रूप में अंगीकार करते हुए उस निर्णय का व्यापक रूप से

अवलंब लिया । विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय को दोषमुक्ति के निर्णय को उलटते समय सतर्क रहना चाहिए था । आक्षेपित निर्णय में इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा की गई दोषमुक्ति या तो प्रतिकूल थी या इसके परिणामस्वरूप न्याय की हानि होगी, कारणों को प्रकट करना तो दूर साक्ष्य का निर्धारण करने पर भी कोई कारण प्रकट नहीं किए हैं ।

9. दूसरी ओर, परिवादी-प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल ने **रंगप्पा** (उपर्युक्त) वाले निर्णय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि अपीलार्थी उस भार का निर्वहन करने में असफल रहा है जो कि उस पर डाला गया है और यह कि अधिनियम की धारा 139 के अधीन उपधारणा प्रस्तुत मामले के तथ्यों को लागू होती है । अभिलेख पर विद्यमान सामग्री का उल्लेख करते हुए इस बात पर जोर दिया गया है कि इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि चैक पर अभियुक्त द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे और यह उस बैंक के नाम में लिखा गया था जहां उसका खाता है । इस बात पर बल दिया गया है कि विचारण न्यायालय द्वारा धारा 138 के अधीन दोषसिद्धि अभिलिखित करते समय प्रतिरक्षा-पक्ष के साक्ष्य का सही मूल्यांकन किया गया था और उच्च न्यायालय ने उस दोषसिद्धि को प्रत्यावर्तित करने में त्रुटि नहीं की है ।

10. अधिनियम की धारा 139 में यह आदिष्ट है कि जब तक कि तत्प्रतिकूल साबित न हो, यह उपधारणा की जाएगी कि चैक के धारक ने चैक किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूर्णतः या भागतः उन्मोचन के लिए प्राप्त किया है । "जब तक कि तत्प्रतिकूल साबित न हो" अभिव्यक्ति से यह उपदर्शित होता है कि अधिनियम की धारा 139 के अधीन उपधारणा खंडनीय है । इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **रंगप्पा** (उपर्युक्त) वाले मामले में इसे "विपरीत भार खंड" का उदाहरण मानते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि इस बात का अवधारण करने के लिए कि क्या उपधारणा का खंडन किया गया है, अवधारणा का मार्गदर्शन आनुपातिकता की कसौटी के आधार पर किया जाना चाहिए । अधिनियम की धारा 139 के अधीन उपधारणा के खंडन

के लिए सबूत का मानक अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता द्वारा मार्गदर्शित होता है । इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :-

> "28. बाध्यकारी न्यायौचित्य के अभाव में, विपरीत भार संबंधी खंड प्रायः साक्ष्यिक भार न कि प्रत्ययकारी भार अधिरोपित करते हैं । इस बात को ध्यान में रखते हुए, यह एक स्थापित स्थिति है कि जब किसी अभियुक्त को धारा 139 के अधीन उपधारणा का खंडन करना होता है तब ऐसा करने के लिए सबूत का मानक 'अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता' होती है । अतः, यदि अभियुक्त ऐसी संभावित प्रतिरक्षा करने में समर्थ होता है, जिससे किसी वैध रूप से प्रवर्तनीय ऋण या दायित्व की विद्यमानता के बारे में संदेह उत्पन्न होता है तो अभियोजन असफल हो सकता है । जैसा कि उद्धरणों में स्पष्ट किया गया है, अभियुक्त ऐसी प्रतिरक्षा करने की दृष्टि से परिवादी द्वारा पेश की गई सामग्री का अवलंब ले सकता है और यह कल्पनीय है कि कुछ मामलों में अभियुक्त को स्वयं अपना कोई साक्ष्य पेश करने की आवश्यकता न हो ।"
>
> (जोर देने के लिए रेखांकन किया गया है)

11. वर्तमान मामले में, अब इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि धारा 139 के अधीन उपधारणा का अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा खंडन कर दिया गया है अथवा नहीं । अपीलार्थी की प्रतिरक्षा यह है कि जैसा कि अभिकथित किया गया है, उसने परिवादी से 15 लाख रुपए की रकम उधार नहीं ली है और न ही उसने किसी वैध रूप से प्रवर्तनीय ऋण के उन्मोचन के लिए चैक (प्रदर्श पी-1) जारी किया है । विनिर्दिष्ट रूप से, अभियुक्त की प्रतिरक्षा यह है कि परिवादी द्वारा उसे ऐसा कोई संदाय नहीं किया गया था जिसके उन्मोचन के लिए चैक जारी किए गए हैं । उसकी प्रतिरक्षा यह थी कि परिवादी को वे चैक ऐसे ऋण के आश्वासन-स्वरूप जारी किए गए थे, जो कि वित्तीय संस्था से अभिप्राप्त किया जाएगा । जैसी कि हमने अवेक्षा की है, परिवादी द्वारा जारी की गई मांग संबंधी सूचना के उत्तर में भी यही प्रतिरक्षा ली गई थी ।

12. इसी पृष्ठभूमि में, उस सामग्री का उल्लेख करना आवश्यक

होगा जिसका प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी को दोषमुक्त करने के लिए अवलंब लिया गया था । अभि. सा. 1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह स्वीकार किया था कि अपीलार्थी द्वारा उसके पक्ष में साधारण मुख्तारनामा निष्पादित किया गया था । स्वीकृततः, अपीलार्थी और प्रत्यर्थी नातेदार हैं और परिवादी के पिता और अपीलार्थी के बीच कुछ सिविल मुकदमेबाजी चली थी । परिवादी ने यह स्वीकार किया है कि वास्तव में स्वयं उसने किसी ऋण संव्यवहार के अधीन अपीलार्थी से 10 लाख रुपए की रकम प्राप्त की थी किन्तु यह कथन किया कि उसने वह रकम अपीलार्थी को लौटा दी है । अभि. सा. 1 ने यह कथन किया है कि अपीलार्थी ने फरवरी, 2004 में उससे 15 लाख रुपए का ऋण देने का अनुरोध किया था । हालांकि अपीलार्थी की प्रतिरक्षा यह है कि वास्तव में परिवादी द्वारा उसे किसी प्रकार की रकम का संदाय नहीं किया गया था, किन्तु ऋण के संदाय के संबंध में अभि.सा. 1 का साक्ष्य महत्वपूर्ण हो जाता है । अभि.सा. 1 के अनुसार, 15 लाख रुपए का ऋण अपीलार्थी के अनुरोध पर उसके एक प्रतिनिधि के हाथों में दिया गया था । अपीलार्थी उस प्रतिनिधि का नाम उपदर्शित करने में भी असफल रहा जिसे 15 लाख रुपए की अभिकथित रकम का संदाय कथित रूप से नकद किया गया है । महत्वपूर्ण रूप से, संपूर्ण रकम का संदाय, अभिकथित रूप से रकम का संदाय किए जाने के साक्ष्य-स्वरूप कोई रसीद या दस्तावेज प्राप्त किए बिना किया गया था । परिवादी द्वारा निधियों की कमी के कारण चैक के लौटाए जाने पर अपीलार्थी को जारी की गई मांग संबंधी सूचना में परिवादी ने यह कथन किया है कि अपीलार्थी ने 15 लाख रुपए की वित्तीय सहायता की ईप्सा की थी और उसे 20,000/- रुपए (जिसमें बाद में शुद्धिपत्र द्वारा सुधार किया गया था) की रकम का संदाय कर दिया है । प्रथम अपील न्यायालय ने अपने निर्णय के अनुक्रम में यह उल्लेख किया है कि अभियुक्त की प्रतिपरीक्षा करते समय परिवादी ने यह कहा था कि अभियुक्त ने 15 लाख रुपए के ऋण की मांग की थी किन्तु परिवादी ने उस समय ऋण के रूप में केवल 5 लाख रुपए की रकम का संदाय किया था जिसके लिए अभियुक्त ने प्रदर्श पी1 जारी किया था । अभियुक्त द्वारा इस बात से विनिर्दिष्ट रूप से इनकार किया गया था । इस संदर्भ में, प्रथम अपील न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि क्या

परिवादी ने, जैसा कि परिवाद में कथन किया गया है, अभियुक्त को 15 लाख रुपए का दस्ती ऋण दिया था या क्या परिवादी ने, जैसा कि तारीख 10 अगस्त, 2004 की विधिक सूचना में उल्लेख किया गया है, 20 लाख रुपए का संदाय किया था या क्या उसने, जैसा कि प्रतिपरीक्षा के दौरान सुझाव दिया गया था, 5 लाख रुपए की रकम का संदाय किया गया था, गंभीर संदेह का विषय है । यदि परिवादी ने अभियुक्त को 15 लाख रुपए का संदाय किया था तो प्रतिपरीक्षा के दौरान यह संकेत देना कि उसने 5 लाख रुपए की रकम का संदाय किया था, प्रथमतः किसी ऋण की विद्यमानता के संबंध में गंभीर संदेह उत्पन्न करता है ।

13. इसके ऊपर जो कुछ उपवर्णित किया गया है, उसके अलावा इस मामले का एक महत्वपूर्ण पहलू यह था कि परिवादी उन निधियों के स्रोत को स्थापित करने में असफल रहा है जिसका उपयोग उसने अभिकथित रूप से अपीलार्थी को 15 लाख रुपए का ऋण देने के लिए किया था । परिवादी ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह अभिसाक्ष्य दिया कि इसके पूर्व अपीलार्थी ने दो चैक दिए थे, जिनमें से एक 5 लाख रुपए के लिए आई. सी. आई. सी. आई. बैंक का था और दूसरा 10 लाख रुपए के लिए केनरा बैंक का था, जो कि उसने प्रस्तुत किए थे । परिवादी ने यह स्वीकार किया कि उसने अपने परिवाद में अभियुक्त द्वारा ये दोनों चैक जारी किए जाने के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया था । परिवादी द्वारा उन दो पूर्ववर्ती चैकों की, जो अभिकथित रूप से अपीलार्थी द्वारा जारी किए गए थे, परिणति के संबंध में कुछ भी नहीं कहा गया था । पूर्ववर्ती दो चैकों से संबंधित तथ्यों और वसूली के लिए उठाए गए कदमों, यदि कोई हैं, को प्रकटित न करना भी एक तात्विक विचारणा है जिससे यह उपदर्शित होता है कि संव्यवहार के संबंध में संदेह था ।

14. तथ्यों और परिस्थितियों पर समग्र रूप से विचार करने पर और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के आधार पर प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम, 1881 की धारा 139 के अधीन उपधारणा का खंडन हो गया है और प्रतिरक्षा अधिसंभाव्य हो गई है । उच्च न्यायालय के निर्णय से, मामले का यह महत्वपूर्ण पहलू सामने आता है कि साक्ष्य का मूल्यांकन नहीं किया गया था या प्रथम अपील

न्यायालय द्वारा प्रस्तुत किए गए कारणों के प्रति भी निर्देश नहीं किया गया था । उच्च न्यायालय ने **रंगप्पा** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का उल्लेख किया । उच्च न्यायालय ने उस विनिश्चय का उल्लेख करते हुए, यह अभिनिर्धारित करके दोषमुक्ति के आदेश को उलट दिया कि संव्यवहारों की मात्र इनकारी या संपूर्ण संव्यवहार की सर्वग्राही इनकारी को मान्य प्रतिरक्षा नहीं समझा जा सकता था । उच्च न्यायालय का निर्णय असंतोषप्रद है और उसमें किसी भी प्रकार के साक्ष्य का उल्लेख नहीं किया गया है । तथ्य संबंधी उन निष्कर्षों को, जो कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त करते समय निकाले गए थे, उलटने का बिल्कुल भी कोई विधिमान्य आधार नहीं था ।

15. ऊपर उपदर्शित कारणों से, हमारा यह मत है कि **रंगप्पा** (उपर्युक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा अधिकथित विधि को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी ने अधिनियम की धारा 139 के अधीन उपधारणा का सम्यक् रूप से खंडन कर दिया है । उसकी इस प्रतिरक्षा को अभिलेख पर विद्यमान सामग्री के आधार पर अधिसंभाव्य पाया गया था कि वैध रूप से प्रवर्तनीय किसी भी ऋण का अभाव था । परिणामस्वरूप, प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति का आदेश न्यायोचित था ।

16. इन परिस्थितियों में, हम इन अपीलों को मंजूर करते हैं और उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को अपास्त करते हैं जिसके द्वारा अपीलार्थी को अधिनियम की धारा 138 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था । हम तद्नुसार, प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश को प्रत्यावर्तित करते हैं ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.